सृजन

की श्रृंखला

सृजन

भारतीय प्रोधौगिकी संस्थान

इंदौर

निदेशक संदेश

प्रिय पाठकों,

यह एक गौरव पूर्ण संदेश है कि, वर्तमान में भारतीय प्रोधौगिकी संस्थान इंदौर, तकनीकी एवं शोध के क्षेत्र मे सभी 23 आई.आई.टी. के अंतर्गत शीर्ष दसवें स्थान पर अपना वर्चस्व स्थापित कर चुका हैं। हमें तकनीकी उपलब्धियों के सापेक्ष सांस्कृतिक एवं भाषिक कलात्मकता का परिचय देने तत्पर होना हैं।

'श्रृंखला सृजन की' पत्रिका हिंदी भाषा में रचनात्मक लेखन के विभिन्न् स्वरूपों को व्यापकता से प्रकट करती हैं, तथा हिंदी के लेखकों को एक उत्कृष्ट मंच प्रदान करती हैं।

मैं संस्थान की इस पत्रिका 'श्रृंखला सृजन की' के वर्तमान प्रकाशन के लिए शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ, तथा भविष्य के लिए यह कामना करता हूँ, कि यह केवल वार्षिक पत्रिका नहीं अपितु द्वैमासिक पत्रिका के रूप में निरंतर सम्पादित की जाए।

धन्यवाद
प्रोफेसर नीलेश कुमार जैन
निदेशक (स्थानापन्न्)
भारतीय प्रोधौगिकी संस्थान इंदौर

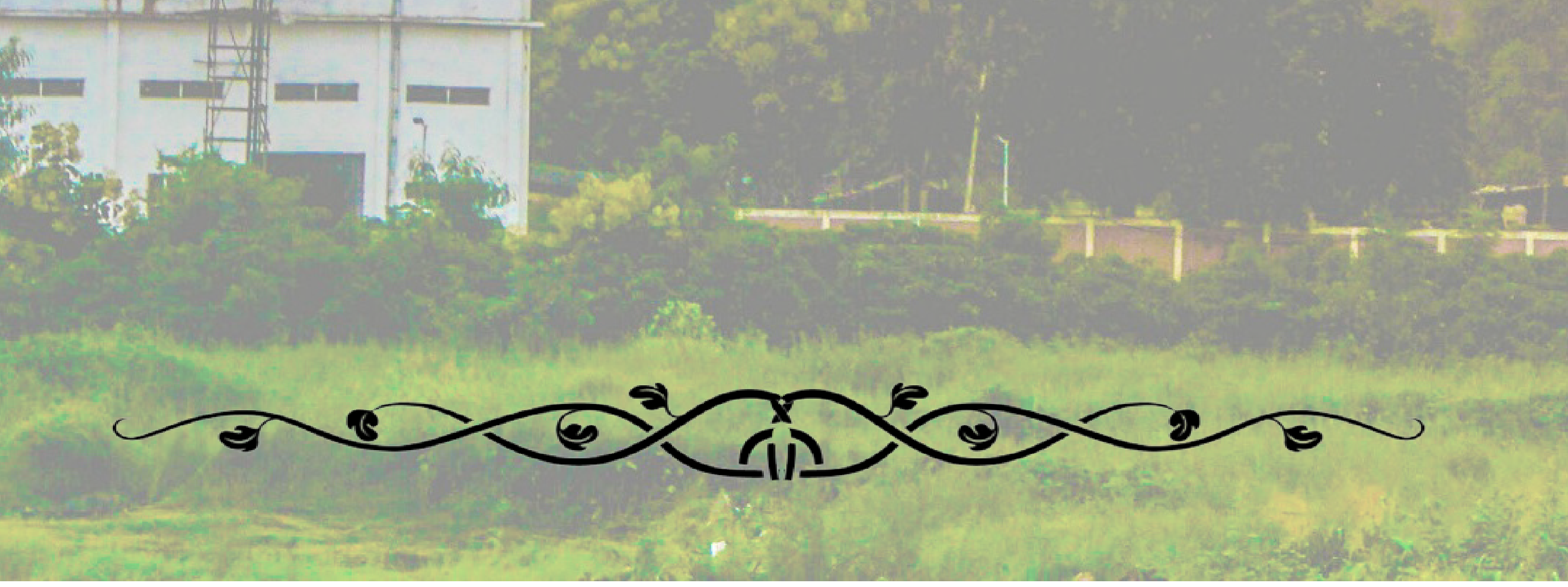

कुलसचिव संदेश

सृजन पत्रिका, आईआईटी इंदौर के छात्रों और उनके परिवार के सदस्यों की साहित्यिक रचनात्मकता का एक नमूना है।

इस पत्रिका के प्रकाशन का प्रयास महामारी की विकट दशा के दौरान हिंदी और साहित्य के प्रति उनके प्रेम को दर्शाता है।

मैं वर्तमान प्रकाशन के लिए शुभकामनाएं देता हूँ, और नियमित प्रकाशन की कामना करता हूँ।

एस.पी. होता
कार्यवाहक कुलसचिव
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, इंदौर

शिक्षा अभिमान या प्रेरणा

उच्च शिक्षा प्राप्त कर लौटे एक नवयुवक को अपने ज्ञान का अभिमान हो गया। कोई भी आता तो वह किसी को भी नमस्कार और सम्मान नहीं करता था। उससे अहंकार हो गया था, कि अब मुझे सीखने के लिए कुछ शेष ही नहीं रह गया है इस अभिमान में वह अपने माता-पिता के भी अवज्ञा करता। वह इतना अहंकारी हो गया कि ईश्वर की उपासना करना भी बंद कर दी।

उसके पिता ने अनुभव किया कि यदि उसके पुत्र को अहंकार से नही उतारा गया तो उसका विकास रुक जाएगा उसको शिक्षा देने के उद्देश्य से उन्होंने एक दिन घर में से थोड़ी चीनी ली और उसे धूल में मिला कर घर के कोने में रख दिया पिता ऐसा करके वहां से चले गए तो घर के छोटे बच्चों ने सोचा की धूल में से चीनी कैसे निकाली जाए मुश्किल यह थी कि धूल में से चीनी के कणों को अलग अलग कर पाना संभव प्रतीत ना हो रहा था । तो बच्चों ने सोचा कि बड़े भैया बहुत विद्वान है उन्हें जरूर ऐसी कोई विद्या आती होगी जिससे इस चीनी को धूल से अलग किया जा सके।

बच्चों ने जाकर उन से निवेदन किया तो नवयुवक अपनी ऐठ के साथ वहां पहुंचा कि वह समस्या का समाधान आसानी से कर देगा उसने उसके अनेक प्रयत्न करने पर भी ऐसा संभव ना हो सका। समस्या का समाधान न निकलते देख उसकी खीझ बढ़ती जाती और वह जितना खींचता उतना बच्चे उसकी हंसी उड़ाते ,थक हार कर वह घर से निकल पड़ा और शाम को ही घर लौटा अब तक पिता घर आ चुके थे।

घर के छोटे बच्चों ने सुबह की घटना पिता को सुनाई पिता ने धूल और चीनी के उस मिश्रण को अपने पास मंगवाया और उसे चीटियों के बिल के सामने रख दिया उनकी आंखों के सामने देखते देखते चींटियां सारी चीनी निकाल कर ले गई मात्र धूल सामने रह गई। युवक यह देखकर हैरान रह गया जो काम वह घंटों मशक्कत के बाद ना कर सका उसे चीटियां इतनी आसानी से कर गई और उसका अहंकार भी वीगत हो गया उसे लगा जीवन में आगे बढ़ने के लिए चीटियों जैसी गुणग्रहता जरूरी है ना कि अहंकार इसलिए हमेशा शिक्षा प्राप्त करने के बाद दूसरों को शिक्षित करें और प्रेरणा बने।

प्रियंका तायड़े
उप प्रबंधक सीएसई

जय शिवाजी महाराज

हम न समझे थे बात इतनी सी,
लाठी हाथ में थी
पिस्तौल कमर पे थी,
गाड़ियाँ फूंकी थी
आँखे नशीली थी,
धक्का देते उनको तो भी वो जलते थे,
हम न समझे थे बात इतनी सी,
हौंसला बुलंद था,
गिराते एक एक को,
क्या जरुरत थी इशारो की,
हम न समझे बात इतनी सी,
हम न समझे बात इतनी सी,
हिम्मत की गद्दारों ने,
अमर ज्योति को हाथ लगाने की,
काट देते हाथ उनके तो
फ़रियाद किसी की भी ना होती,
हम न समझे बात इतनी सी
भूल गये वो इंसानियत,
अरे, क्या जरुरत थी किसी से डरने की,
संगीन लाठी तो आपके हाथ में थी
हम न समझे थे बात इतनी सी,

हमला तो हमपे था,
जनता देख रही थी,
खेलते गोलियों की होली तो,
जरुरत न पड़ती रावण जलाने की,
रमजान के साथ दिवाली भी होती
हम न समझे थे बात इतनी सी,
सांप को दूध पिलाकर
बात करते है हम भाईचारे की,
ख्वाब अमर जवानों के,
जनता भी डरी डरी सी,
हम न समझे बात इतनी सी
हम न समझे बात इतनी सी

-अमित जाधव

बलिदान

मौसम का रुख बदलने लगा है, यूँ,
हर ज़हन में सवाल है, ऐसा क्यूँ ?

सर्द मौसम में बरसते - मेघ,
और वर्षा ऋतु में भीषण गर्माहट क्यूँ ?

समय चक्र बदलता सा किंतु, आगाज़ है कुछ और ही,
कुछ मान बैठे हैं हम, फिर अंजाम कुछ और क्यूँ ?

मानव दोष लगाए परम पर, इतनी विकट विषमता का,
किंतु परम ही पूछे विपरीत, तू जानता है ऐसा क्यूँ ?

परिवेश को ढंक दिया, आधुनिकीकरण से हमने,
प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन क्यूँ ?

तीवृ हिमस्खलन और नित बढ़ता समुद्र जलस्तर,
प्रकृति विनाश कगार पर आनी,
तो फिर निरंतर पेड़ों का "बलिदान" क्यूँ ?

स्लोगन

"खेत सूखे, खलियान सुखे, सूख रहे हैं सागर।
वृक्ष नये लगाकर तुम, वर्षा से भर लो गागर।"

शिल्पा चौहान (शिल्प)
प्रबंधक राजभाषा/अंतर्राष्ट्रीय
कार्य व आउटरीच/ टी. पी. सी.

नव वर्ष की पहली सौगात

नए वर्ष के प्रथम दिवस पर
आया शुभ संदेश
कोरोना संकट से मुक्त होगा
दुनिया का हर देश
जिसने दुनिया को थी मारी
चीन से आई थी बीमारी
भय भीत थे नर और नारी
कोविड-19 का लेकर वेश
इस संकट से मुक्त होगा
दुनिया का हर देश
हर आपदा से लड़ लेंगे
मुक्ति पाकर ही दम लेंगे
कदमों को ना रुकने देंगे
हौसलों को ना झुकने देंगे
स्वस्थ मन और स्वस्थ तन होगा
होगा नहीं कोई क्लेश
अब इस संकट से मुक्त होगा
दुनिया का हर देश।

-चेंनिका

सफर

धूप में बारिश में मैं चलता रहा,
हर घड़ी दिन की तरह ढलता रहा

जिम्मेदारियों की धूप इतनी तेज थी,
बर्फ बन खामोश मैं गलता रहा

गिर न जाएं नींद में पलकें कहीं,
अपनी आँखें ख़ौफ़ में मलता रहा

जब भी अंधेरे में राहें गुम हुई,
दिया बनकर मेरा दिल जलता रहा

घाटियां गहरी थीं ऊंची चोटियां,
सफर अकेला हरदम खलता रहा

था मुसलसल सफर नसीब में,
इस लिए चलना था तो चलता रहा

अब तो राहें भी सफर पर हैं मेरी,
वास्ता मंज़िल से हरपल टलता रहा

सब करेंगे अब तो बस यूं जिक्र मेरा,
क्या गजब था मुसाफिर चलता रहा

सुधीर कुमार मैठानी
सहायक कार्यकारी अभियंता- विद्युत
अधोसंरचना विकास कार्यालय

चलन

नए झूठ ही व्यापारों में चलते हैं|
और निकम्मे नाकारों में चलते हैं|

आना जाना उनका पहले हम तक था,
'सरकार' अब सरकारों में चलते हैं|

अब तो चिमटा हड्डी से ही बनना है,
लोहे तो अब तलवारों में चलते हैं|

सोने जा के संदूकों में दुबक गए,
खोटे सिक्के बाज़ारों में चलते हैं|

खबरें कानों कान चले हैं दबी जुबाँ,
अब किस्से ही अखबारों में चलते हैं|

-राजेश "ख़ुशी"
प्राध्यापक

बँटवारा

आज का दिन हर दिन जैसा नही था। पूरे घर में शोर मचा हुआ था, अंदर से चीज़ें बाहर लाई जा रही थी और उनका आँगन में ढेर किया जा रहा था। आज दोनों भाइयों में बँटवारा होने वाला था। बच्चों का उत्साह देखते बनता था। जो होने जा रहा था, वो उनकी समझ से तो बाहर था लेकिन उनको चीजों का ढेर करने में बड़ा मज़ा आ रहा था। होड़ लगी हुई थी कि सबसे पहले कौन आँगन में पहुँचता है? देवरानी और जेठानी मन की खुशी बाहर नहीं आने दे रही थी। छोटी बहू सोच कर खुश थी कि अब उसे जेठानी के और ताने नहीं सहने पड़ेंगे। अब वो अपने घर की मालकिन खुद होगी, सारा पैसा उसके हाथ में दिया जायेगा और हर चीज़ का सही हिसाब रखा जाएगा। वो सोच कर खुश थी कि अब उसके ओढ़ने-खाने के दिन आयेंगे। अब उसके दूध के भगोने के पास जेठानी नहीं बैठी होगी और वो खुद उबले दूध से गाढी मलाई उतार के अपनी थाली में डालेगी।

दूसरी ओर जेठानी की भी कम योजनाएँ नही थी। सिनेमा जाने की उसकी बरसों पुरानी इच्छा अब पूरी होगी। इस इच्छा के आड़े पहले उसके खुद के माँ बाप आये, शादी के बाद सास और उसके बाद बड़ी बहू की जिम्मेदारियाँ । लेकिन अब ऐसा नही होगा, अब वह जो चाहेगी, करेगी। अब वह हर तीसरे महीने पीहर जायेगी और अपनी माँ को उसकी पसंदीदा गोटे वाली साड़ी लेकर देगी।

बँटवारे में किसी के हिस्से में कम या ज्यादा ना आये इसका ध्यान रखने के लिये जीजाजी को बुलाया गया था। आंगन में जीजाजी दोनों हाथ बांधकर खड़े थे और एक-एक चीज़ का बँटवारा इस तरह कर रहे थे जैसे कि वह सोने की हो, आखिर जिम्मेदार आदमी जो ठहरे। इस समय जीजाजी का महत्त्व मोहिनी से कम नही था कि वो जो भी दे, देवताओं और दानवों दोनों को स्वीकार है। लेकिन जीजाजी ने मोहिनी की तरह पक्षपात नही किया। अगर एक भी चीज़ किसी की हिस्से में ज्यादा चली गयी तो उनकी इज़्ज़त में दाग लग जायेगा। आखिर ईश्वर से भी ज्यादा भरोसा है उन पर, दोनों भाइयों को। छोटे भाई के हिस्से में दूसरा मकान आया था, जो कस्बे के आखिरी छोर पर था। ये मकान उन्होंने करीब दो साल पहले खरीदा था और तभी से छोटे भाई ने तय कर लिया था कि बँटवारा होने के बाद वह यहीं आकर रहेगा, क्योंकि यहाँ वैवाहिक जीवन का सुख संभव है जिससे वह अब तक लगभग वंचित ही रहा था।

लगभग सभी चीजों का सफलतापूर्वक बँटवारा हो गया था। दोनों भाइयों ने दो-दो बार मुआयना करके सुनिश्चित किया कि सब चीज़े बँट गयी है और बराबर बँटी है। छोटे भाई ने अपना सामान एक गाड़ी में लाद लिया था और जाने को तैयार था, इतने में ही बाहर के नीची छत वाले पुराने कमरे का टूटा-सा दरवाजा खोलकर हाथ में पोटली लिए लाठी टेकती बूढी माँ बाहर आई और बोली, “बेटा, मेरा बँटवारा हो गया? मैं किसके हिस्से में हूँ?

-अक्षय मेहता

सुख-दुख

वह जीवन भी क्या जीवन है जिसमे संघर्षो का नाम न हो,

मिले न गम जब तक जीवन में खुशियों का भी एहसास न है।

गम तो वजह है जिससे हर सुख का एहसास हो,

फिर क्यों घबराते दुःख से रुक जाते निराश हो।

यह जानता सब संसार है हर अँधेरी रात के बाद होता
मुस्कुराता कल है।

दुःख एक कड़वा एहसास है तो सुख इसकी संतान है,

दुःख तो हमारा मेहमान है फिर क्यों हम हैरान है।

सुख को मानते यदि नाव है तो दुःख इसकी पतवार है,

जीवन के दो पहलु है ये जैसे जुड़वाँ भाई है।

सुख की सबको प्यास है तो दुःख अलग एहसास है,

फिर क्यों हम हैरान है।

-सत्यम सिंह
शोधार्थी

कहाँ हो तुम?

कहाँ हो तुम?
मैं ढूँढ रहा हूँ तुम्हें...

चिड़ियों की बातें सुनते,
किसी पेड़ के पीछे ।

खाली सड़क पर चलते,
अपनी उँगलियों के बीच।
नीला आसमान निहारते,
अपने दायें कंधे पर

किसी चट्टान पर ठिठुरते,
अपने सीने और हाथों के बीच।
उगते-डूबते सूरज को देखते,
गालों पर पड़ती हवा में ।

शाम को चाय पीते,
सामने की कुर्सी पर
रात को डायरी लिखते,
उसके पन्नो के बीच।

कहाँ हो तुम?
मैं ढूँढ रहा हूँ तुम्हें....

-अक्षय मेहता

प्रकृति के खिलाफ आदमी का संघर्ष

संध्या का समय था। रामनाथ और उसकी पत्नी सरला चारपाई पर बैठकर इंद्रदेव के प्रसन्न होने की आशा में प्रार्थना कर रहे थे। रामनाथ एक किसान है जिसे विरासत में पुरखों से कुछ बीघा खेत ही मिले हैं। बरसों से खेती करके दोनों अपना गुजर बसर कर रहे हैं परंतु इस वर्ष इंद्रदेव की उदासीनता उनकी सारी मेहनत पर पानी फेर रही है।

" लगता है इस बार भी वर्षा न होगी क्या? अगर ऐसा ही हाल रहा तो भोजन के नाम पर फांके करने पड़ेंगे ", अंगीठी जलाते हुए सरला ने अपने पति रामनाथ से कहा। रामनाथ के पास सरला के इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। वह कब से बारिश होने की बाँट जोहना रहा था। पिछले वर्ष की तरह इस बार भी सूखा रह जाए , इस विचार से ही उसका हृदय कांपने लगता था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें? प्रकृति की इस विचित्र समस्या का कोई समाधान उसे सूझ नहीं रहा था। बारिश होने की आशा से उसने अपने विचलित मन को दिलासा दिलाई और किस्मत ठोक कर बैठ गया। मनुष्य भी कितना विचित्र जीव है। एक तरफ जब वह घोर निराशा के सागर में गोते लगा रहा होता है तो वहीं दूसरी ओर आशा का एक दीपक जला अपने मन को शांत रखने का भरसक प्रयास करता है। परंतु जब उस झूठी आशा की लौ बुझ जाती है तो उसे अपना जीवन कष्टमय एवं भारी प्रतीत होने लगता है। देखते-देखते कई दिवस गुजर गए और रामनाथ झूठी आशा का दीपक जलाये वर्षा होने की राह देखता रहा। उसकी पूरी मेहनत खेतों में ही सूख गई परंतु बारिश की एक बूंद भी उसे नसीब ना हुई। ऐसा लग रहा था मानो इंद्रदेव के कोप का वही भाजक था। समय बीतता गया और एक दिन ऐसा आया जब दोनों को खाने की भी लाले पड़ने लगे। जो अनाज रखा था वह तो पिछले वर्ष के ही सूखे ने निगल लिया था। जो पूंजी थी उसे सारी रामनाथ ने बीज खरीदने में लगा दी थी। उसे आशा थी कि इस बार इंद्रदेव उसकी दुर्दशा देखकर दयावान होंगे परंतु उनकी निष्ठुरता ने रामनाथ को तोड दिया था।

रामनाथ प्रकृति के इस परिहास से उबरा भी नहीं था कि सरला की स्थिति बिगड़ने लगी। कुछ क़र्ज़ से, कुछ गिरवी रखके जो धन प्राप्त हुआ उसे रामनाथ ने सरला की दवा दारु में लगाया, परंतु होनी को कौन रोक सकता है? मनुष्य कितने भी जतन कर ले ईश्वर से तो नहीं जीत सकता। ईश्वर से उसका संबंध सिर्फ दाता और प्राता का है। दुख हो या सुख, वह जो भी हमारे भाग्य में देता है उसे हमें झेलना ही पड़ता है फिर वह हमें स्वीकार्य हो या ना हो। इस एक-तरफे रिश्ते का ही असर है की हमारी इच्छा का उसके लिए कोई मूल्य नहीं। पत्नी की मृत्यु ने रामनाथ के हृदय पर वज्राघात किया था। अब वह अंदर से टूट चुका था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि ईश्वर उसे किस जन्म के पाप का फल दे रहे हैं। उसने कौन सा अपराध किया है? परंतु उसके इन प्रश्नों को ना वहां कोई सुनने वाला था और ना ही कोई उत्तरदायी। किसी तरह मांगते खाते दो माह गुजर गए। रामनाथ को खेती-बाड़ी की अब कोई परवाह न थी। उसके जीवन में शून्य सा आ गया था किससे उबर पाना कष्टमय प्रतीत हो रहा था।

वह अपने दुखों के अथाह सागर में डूबा ही था कि द्वार पर किसी ने दस्तक दी। अपने अंतर्द्वंद में पड़े विघ्न से झुंझलाते हुए रामनाथ ने द्वार खोला तो सामने त्रिभुवननाथ गंभीर मुद्रा में खड़ा था। रामनाथ ने उसे अंदर आने को कहा और फिर दोनों अंगीठी की लौ के सामने बैठ सिगार फूंकने लगे। " बंधु अगले वर्ष भी वर्षा ना हुई तो खेत खलिहान के साथ-साथ हमारा जीवन भी नष्ट हो जाएगा। हमें कोई उपाय खोजना होगा। हम किस्मत ठोक कर बैठे तो नहीं रह सकते ", सिगार फूंकते हुए त्रिभुवननाथ ने रामनाथ को अपनी समस्या बताई। " खेत खलिहान जाएँ अपनी बला से, मुझे क्या। मेरे लिए सब पहले ही महत्वहीन हो चुके हैं। फिर हम मनुष्य कर भी क्या सकते हैं? प्रकृति से तो नहीं जीत सकते। ", रामनाथ ने नीरस भाव से कहा।

" लड़ तो सकते हैं ना। हम नहर काटकर पानी लाएंगे। सरकार नहरों में पानी छुडवाए उससे पहले हम एक नाला अपनी तरफ लाएंगे ताकि हमें भी पानी मिल सके ", त्रिभुवन ने रामनाथ को समझाते हुए कहा। त्रिभुवननाथ के विचार को सुनते ही रामनाथ के संपूर्ण शरीर में बिजली सी दौड़ पड़ी। ऐसा लग रहा था मानो उसे अपनी जीवन से खेल रही नियति से लड़ने का एक सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया हो। रामनाथ प्रौढ़ावस्था में भले ही आ गया था परंतु भुजबल इतना था कि नवयुवक भी मात खा जाए। प्रकृति से मुक़ाबिल होने का यह अवसर वह हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। चेतना के इस हिंसात्मक स्वरूप ने उसे नई स्फूर्ति प्रदान कर दी थी। दोनों गांव के कुछ किसानों एवं बेघरों को साथ लेकर काम में जुट गए। नहर गांव से 3 मील दूर थी। वहां से एक नाला काटकर गांव के सूखे प्रपात्र में मिलाना किंचित मात्र भी आसान कार्य नहीं था, परंतु रामनाथ और उनके साथियों ने भी ठान ली थी कि वह अपनी मेहनत को भगवान भरोसे नहीं छोड़ेंगे। शरीर रुकने की सलाह भी दे परंतु हृदय को कौन समझाए, वह किसी बालक की तरह अपनी धुन में मगन, अपनी जिद पर अड़ा हुआ था।

एक माह गुजर गया।लोगों की मेहनत रंग लाई और नाला बनकर तैयार हो गया। सभी गांव वाले जश्न मनाने में जुट गए परंतु रामनाथ उनके बीच नहीं था। वह तो आराम से घर में बैठ कर सिगार फूंक रहा था जैसे वह किसी बड़े भार से मुक्त हो गया हो।अब उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। अब वह चैन से अपनी सरला के पास जा सकता था।

-शुभेंदू त्रिपाठी

माँ भारती

बंदूकों की नोक पर ये जान हमने वार दी।
धन्य हैं जो जन्मे तेरी गोद में माँ भारती ॥
हर घड़ी मैं हर प्रहर बस माँ तुझे नमन करूँ।
शून्य भय हो आँखों में काल से भी न डरूँ॥
ये सर्द क्या ये गर्म क्या सरहद पर तेरी मैं खड़ा।
जब भी बुलावा आया माँ सीना ताने मैं लड़ा ॥
हैं अनंत शब्दों में माँ होती तेरी आरती ।
धन्य हैं जो जन्मे तेरी गोद में माँ भारती ॥
सरहद पर रह के हमने बात ये है जानली ।
इन आंतरिक दुष्टो से वो बाहरी है मामूली ॥
दुश्मन है वो दुश्मनी जी-जान से निभाते हैं।
दोस्त होकर भी ये हमें क्यूँ छल जाते हैं ॥
काम क्या- लोभ क्या जो तू हमें संवारती ।
धन्य हैं जो जन्मे तेरी गोद में माँ भारती ॥
बीते लम्हों के लिए ना पास मेरे वक्त हैं।
रग में जो ना खौले पानी है ना कि रक्त हैं॥
जितना भी गाऊँ तेरी गाथा लगता बस अल्प हैं।
सब कुछ दिया माँ तूने, तू वृक्ष मेरा कल्प हैं ॥
रंगरूप वेशभूषा सबको सम है मानती ।
धन्य हैं जो जन्मे तेरी गोद में माँ भारती ॥
बंदूकों की नोक पर ये जान हमने वार दी।
धन्य हैं जो जन्मे तेरी गोद में माँ भारती ॥

- शिवम सरले

गाऊंगा गुणगान तेरा

चाहे शब्द नहीं हो पास मेरे,
या नींद भरी हो आंखों में।
चाहे तन को जलाती गर्मी हो,
या थर से कपाती सर्दी हो॥

चाहे वायु भी मनमानी करे,
या सर से ऊपर पानी बहे।
बस डटकर तेरा लाल खड़ा,
जो गायेंगे गुणगान तेरा॥

जिसके लिए न शब्द लगे,
जिसे गूंगे भी गाते हो ।
जिसकी बाधा ना नींद बने,
जो सपनों में भी आते हो॥

जिसके लिए न गर्मी लगे,
न सर्द है इन हवाओं में।
सरहद ना जिसकी सीमा हो,
न बटा नगर-गाँवों में ॥

"ऐसा है माँ गुणगान तेरा, सबसे सुंदर सबसे प्यारा।"

- शिवम सरले

क्यों एक मौत जरूरी है?

आवाज़ को चीख बनाने को?
क्यों एक मौत जरूरी है,
जज़्बातों को अल्फाज़ बनाने को?
सुना है खामोशियां भी चिल्लाती हैं परेशान होकर,
पर क्यों एक मौत जरूरी है,

बहरों को सुनाने को?
क्यों एक मौत जरूरी है,
लहू को लावा बनाने को?
क्यों एक मौत जरूरी है,
मातृ भूमि को बचाने को?
देखा है बिना गोलियों के जीतते लोगों को लड़ाईयां,
फिर क्यों एक मौत जरूरी है,
दुश्मन को दोस्त बनाने को?

क्यों एक मौत जरूरी है,
इन्सान कहलाने को?
क्यों एक मौत जरूरी है,
समाज में इज्ज़त पाने को?
आदर करें सभी का कहते यही हैं जब,
फिर क्यों एक मौत जरूरी है,
मन से छुआछूत मिटाने को?

क्यों एक मौत जरूरी है,
उस ब्रम्हांड निर्माता को मनाने को?
क्यों एक मौत जरूरी है,
अपनी आस्था दिखाने को?
कण कण में ईश्वर हैं यही सुना है जब,
फिर क्यों एक मौत जरूरी हैं.
आप को विपदा से बचाने को?

जरूरी नहीं कि सुन लेंगे बहरे,
जरूरी नहीं कि दोस्त बन जाएं दुश्मन भी,
जरूरी नहीं कि मिल जाए सभी को इज्ज़त,
जरूरी नहीं कि प्रसन्न हो जाएं ईश्वर,

बस एक मौत जरूरी है यहां,

कुछ दिन मोमबत्तियां जलाने को,
कुछ दिनों तक शोर मचाने को,
कुछ उत्पात मचाने को,
कभी दरिंदों को बचाने को,
तो कभी साहब की कुर्सी बचाने को।

- मणीवेंद्र।

शाश्वत कालचक्र

स्याह अंधेरा घना है,
घुप्प अंधेरा है, अंधेरा घुप्प स्याह बड़ा है,
कालरात्रि सा काल बन के खड़ा है,
ढीठ है तू भी, जीत की जिद पे अड़ा है।
मान ले हार, जीवनदान मिल जाएगा,
उजाला ही उजाला, संघर्ष विराम मिल
जाएगा।

स्याह की ही स्याही बनेगी,
सतत् प्रयासों की कहानी बनेगी,
जिद की पाल तान कर,
अन्धकार से ही ये नाव चलेगी।
उजाले की न बाहर तलाश कर,
गहन अंधकार का इंतज़ार कर,
प्रकाश का अंकुरण होगा,
तू बीज सा अनुसरण कर।
कालरात्रि को काल बन जाने दे,
भूमि की चाल को भूचाल बन जाने दे,
मृत्यु का ही आलिंगन करने दे,
न अब तू हार से डरने दे,
अन्धकार की अति घट जाने दे,
ब्रह्माण्ड सारा शिवत्व से पट जाने दे,
प्रयास कण कण परमाणु का आदित्य उदित होगा।

बीज अंकुरित हुआ अवचेतन में तब गर्भ मैं तू आया था,
गर्भ में रह कुछ दिन गर्भ में समाया था,
गर्भ की धरा से प्रस्फुटित हो नाभि से जीवन पाया था,
या यूं कहूं मृत्यु का निवाला बन आया था।
क्षण क्षण तू मृत्यु को प्राप्त हो रहा है,
जीवन को नहीं तू मृत्यु को जी रहा है।

काल के गाल में असंख्य ब्रह्माण्ड समाए जा रहे है,
फिर तुम हम क्यों मिथ्या बंधन बनाए जा रहे है,

मृत्युलोक है ये, मृत्यु अटल है, शाश्वत है, ये क्यों भुलाए
जा रहे है

-राहुल कुमार वर्मा

कड़वा सच या मीठा झूठ - एक असमंजस

चुप रह जाता हूँ कभी उसका दिल रखने के लिए,
लेकिन क्या ऐसा दिल रखने से भरोसा नहीं टूटता,
क्या वो मुझे समझती है और क्या मैं हूँ असल में,
इसी प्यार और मोह की डगर पे हूँ मैं हमेशा झूलता।

डर है किसी दिन नज़रों से ना उतर जाऊँ,
फिर भी आज नज़रे मिलाने के लिए झूठ हूँ मैं बोलता।
सच कह दिया तो खो दूँगा उसे,
इसलिए सच तोड़ने - मरोड़ने के बहाने हूँ मैं दूँढता।

कल को सच जानकर रो देगी वो,
इसलिंए सच बताने से हूँ मैं भागता।
कैसे मुस्कान लाऊँ उसके चेहरे पर,
इसी के तरीके हूँ मैं सोचता।

कितनी ऊर्जा है उस चेहरे की अनमोल हँसी में,
जिसे हर रोज़ हूँ मैं निहारता।
उठते - बैठते ,चलते - फिरते ,
उसे याद करके नींद में भी हूँ मैं मुस्कुराता।

झूठ कितना भी प्रबल हो,सच प्रकट होकर रहेगा,
यह भी हूँ मैं जानता।
आखिर वो दिन आ ही गया,
जिसे आज भी याद करने से हूँ मैं भागता।

एक दिन जान गई वो भी,
जिस सच को मन में लेकर हूँ मैं घूमता।
आज वो नहीं है मेरे साथ,
बस इन्हीं शब्दों के साथ हूँ मैं उसे खोजता।

मिल गई किसी दिन वो अगर, कह दूँगा कि,
गलत था मैं सोचता।
सच ना कहकर जो अदृश्य चोट दी उसे,
उसके लिए आज भी खुद को हूँ मैं कोसता।

इस हृदयाघात घटना से सीख लेकर,
अब सिर्फ सच ही हूँ मैं बोलता।
इसलिए अब इस स्वार्थी दुनिया को,
दूर से ही हूँ मैं चुभता।

क्या आज भी सच और झूठ की वही परिभाषा हैं,
इस संसार से हूँ मैं पूछता।
जितने मुँह उतनी बातें , इन विभिन्न मतों
के चंगुल में आज भी हूँ मैं जूझता।

बहुत वैचारिक टकराहट है मन में,
शायद उसे भी आज मैं बोलता।
लेकिन अब मेरी आँखें नम हैं,
इसलिए उस सच्चे प्यार कि रंगीन यादों में,
अपनी खुशी को हूँ मैं खोजता
अपनी खुशी को हूँ मैं खोजता ॥

-विशाल चिचानी

सीख

हम मुसाफिर जिन्दगी के,आगे बढ़ते गए।
न दी तालीम किसीने , देख-सीखते गए॥
देखा था सूरज की चमक को
पर नैन को वह थी खटकी।
शीतल चमक मोती की मिली जो
नैन उदास मन को भी वह भायी॥

सफलता के शिखर पे, भले ही हो जाओ खड़े
अभिमान से मैत्री करो नहीं।
औहदे कि किसी को पर्वाह नहीं तेरे
बस है तो तेरे बर्ताव की॥

हम मुसाफिर जिन्दगी के,आगे बढ़ते गए।
न दी तालीम किसीने , देख-सीखते गए॥
देखा था दर्पण सा कोई
ओह! था वो पानी तालाब का।
पर देखा उसी जल को था
नदियाँ बन गरजती हुई॥

हर वक्त न होता एक सा,
तुम भी बदलो संग उसके।
तूफान में तुम भी झूकना
पर डटना कुठर के सामने॥
हम मुसाफिर जिन्दगी के,आगे बढ़ते गए।
न दी तालीम किसीने , देख-सीखते गए॥

- अदिती ठाकुर

"क्यों?"

क्यों मै हक़ीक़त से दूर भागी जा रही हूँ?

क्यों तुम्हारे होने के झूठे एहसासों को बढ़ा रही हूँ?

क्यों इस कल्पना सी दुनिया में खोकर असलियत को झुठला रही हूँ?

क्यों अस्तित्वहीन सी तुम्हारी रूह को अपना अस्तित्व बना रही हूँ?

क्यों तुम्हारी अनजान बेजान आत्मा से सदियों का प्यार जता रही हूँ?

क्यों ख़ामोश रहकर भी तुमसे बतला रही हूँ?

क्यों तुम्हारी इस निराकार सी छवि को देखकर मुस्कुरा रही हूँ?

क्यों तुम्हारी अनसुनी सी धुन में खुदको नचा रही हूँ?

क्यों ख्यालों के पुलाव में खुदको पका रही हूँ?

क्यों बेतुकी सी बातों को संजोगो के सहारे सजा रही हूँ?

आख़िर क्यों, इन असत्य से ख्वाबों के सागर में इतनी आसानी से समा रही हूँ?

भला बता भी दो कि, मै इस "क्यों" का जवाब क्यों नहीं ढूंढ़ पा रही हूँ?

~रिया!

अपना हिन्दुस्तान

देश जो अपने आप में महान है
मिट्टी में जिसकी बलिदान है
जिसकी जनता मे भरा अभिमान है
तिरंगा जहाँ हर व्यक्ति की शान है
वही तो हिन्दुस्तान है ||

जिसके इतिहास में कूट कूट कर भरा बलिदान है
जहाँ लोगों के लिए सब कुछ अपने देश की आन बान और शान है
जहाँ 50 साल का आदमी भी जवान है
जिसकी शान उसका किसान है
वही तो हिन्दुस्तान है ||

जहाँ धरती करती नमन और सर झुकाता
आसमान है
जहाँ कहीं आरती कहीं अजान है
कहीं दशहरा तो कहीं रमजान है
जहाँ के लोगों में भरे ढेर सारे अरमान हैं
जहाँ मानते मेहमान को भी भगवान है
वही तो हिन्दुस्तान है ||

जिसकी संस्कृति उसकी आन है
जिसके लोकतंत्र ने पाया दुनिया में प्रथम स्थान है
जिसके लिए सब कुछ उसका वर्तमान है
जिसे अभिनंदन जैसे सैनिकों पर अभिमान है
वही तो हिन्दुस्तान है ||

-कुमार मोहित

वक्त !!!

वक्त !!!
काफी कीमती होता है ना,
पल मे ही गुजर जाता है,
एक पलक झपकाने कि देर है बस,
गुजरते हुए गहरे घाव छोड़ जाता है,

याद करता हूँ आज भी वो दिन मैं,
कि काश वो गलती न करता
वक्त की थोड़ी सी सुनके
उस पल मे हड़बड़ी न करता
तो आज यह मंज़र न होता मेरे सामने
और इस बात का अफसोस न कर रहा होता
मैं अपने दिल मे

वक्त !!!
काफी दोगला होता है ना,
कभी अच्छा दोस्त तो कभी जानी दुश्मन बन जाता है
आज मजेदार होता है तो कल बुरा बन जाता है,
आज के मामूली इन्सान को कल का रईसजादा
बना देता है
तो कल के अमीर को आज का तड़पता हुआ
गरीब बना देता है

वक्त !!!
काफी अजीब होता है ना,

इससे बढ़कर कुछ नहीं है,
इससे दगा करने जाओ तो तुम्हे
गहरी नींद सुला देता है
आगे निकलने जाओ तो तुम्हे तुम्हारी
औकात दिखा देता है,
अगर इससे डर जाओ तो जिन्दगी
जीना भुला देता है,
पर यदि इस से से दोस्ती कर लो, तो तुम्हें
सबसे उत्तीर्ण बना देता है ।

क्यों, है न यह वक्त काफी दोगला
और अजीब,
इसकी अहमीयत पहचानने मे ही छुपा है
अपना नसीब ।
जिन्दगी काफी लम्बी लगती है ना,
यह वक्त ही तो है जो बनाता है
इसे इतना खास
अभी भी समय है, इसकी कीमत पहचान लो
मेरे यार,
वरना, पल भर मे समाप्त हो जाएगा
यह अनोखा एहसास।

-सुजल पटेल

जातिवाद से आज़ादी!

है तेरे भीतर भी वही रक्त,
जो मेरे भीतर बह रहा,
फिर आखिर क्यों यह समाज,
तुझे प्रेम और मुझे हीन भाव से देख रहा?

है तेरी प्यास भी मेरी प्यास - सी,
फिर क्यों है पानी अलग - अलग
बहुत हो गया, बहुत सह लिया,
अब गई है ज्वालों सुलग - सुलग।

जितनी मेहनत तू है करता,
उतना पसीना मैं भी हूँ बहाता,
फिर क्यों तू सारी प्रशंसा पाता,
और मैं केवल नौकर बन जाता।

आखिर क्या कसूर है मेरा
ना ही कोई लाभ है तेरा,
आ तोड़े इन जंजीरों को,
जिसने है समाज को घेरा।

तू भी मनुष्य मैं भी मनुष्य,
बाकी सब सिर्फ भ्रम है,
सब बंधनों को भुलाकर,
मनुष्यता ही एकमात्र धर्म है।
बहुत देख लिया , बहुत सुन लिया,
अब ना रहेंगे बर्बादी,
अब पूर्ण रूप से चाहिए,
इस जातिवाद से आज़ादी!
इस जातिवाद से आज़ादी!

-विशाल चिचानी

आज फिर....

आज फिर आंखें नम है ,किसी ने 16 दिसंबर दोहराया है ,
आज किसी ने ,एक लड़की को फिर निर्भया बनाया है |

आज फिर इंसानियत शर्मिंदा है ,किसी ने कुछ सवालों को उठाया
की एक मां ने अपनी लाडली को ,क्यों अदब नहीं सिखाया है |
आज फिर हर लड़की सहमी है , किसी ने उसकी रूह को दुखाया
जिसने हर घड़ी ,तपिश को उसकी, अपने ऊपर पाया है |

आज फिर एक बहन शर्मिंदा है, किसी ने उन आंखों को झुकाया
दर दिन पहले ही जिसने उन हाथों पर, राखी को सजाया है

-प्रज्ञा सिंह

वायरस

वो बोले चन्द रोज़ में हारेगा वायरस।
मैं जानता था साल भर मारेगा वायरस ॥
बाहर के जंक फूड से दिलवाएगा निजात।
लोगों को कुछ दिनों में सुधारेगा वायरस ॥
घर बैठ के मर जाएंगे तफ़रीह के कीड़े।
भटकन पसंद रूह को तारेगा वायरस॥
मिट जाएंगे कुछ रोज़ में सारे मुग़ालते।
रिश्तों की ज़िल्द ऐसे उतारेगा वायरस ॥
ढूंढेंगे हाथ नींद में भी सैनेटाइज़र ।
आकर के ख़्वाब में भी पुकारेगा वायरस॥

-पवन गुप्ता

मंत्री जी और सांप

चुनाव के दिन समीप थे, मंत्रीजी घबराये थे ,
कल ही जनता ने प्रचार में जुटे चप्पल बरसाए थे।
मंत्रीजी जी विचार किये फिर एक पंडित के पास गए ,
मेवा मिष्ठान माल मुद्रा ,सब पंडित जी को भेंट किये
बोले प्रभुजी कुछ कृपा करो मेरा भी कुछ उद्धार करो
ये चुनाव वैतरणी है अब इससे मुझको पार करो।

मोटा मुर्गा फंसा देख पंडितजी मन में हर्षाये ,
मंत्री की कुंडली देख देख अपना मुख थोड़ा बिचकाये,
बोले राहु केतु के मध्य सारे ग्रह बैठे हुए हैं
इसी कारण देवतागण आपसे ऐंठे हुए हैं।
यही कारण है जनता में उपजा रोष है ,
क्योंकि श्रीमान आपकी कुंडली में कालसर्पदोष है।

इक्क्यावन हजार दक्षिणा और एक गाय का दान करो ,
एक सांप को एक महीने बेटे जैसा प्यार करो।

पंडितजी के निर्देशों पर मंत्रीजी ने अमल किया ,
सांप ख़रीदा घर को लाये शुद्ध दूध का जतन किया।

एक माह तक मंत्री जी ने सांप की जमकर सेवा की
चुनाव नतीजे से ज्यादा अब सांप की रहती चिंता थी।

मगर सांप तो सांप था, सांप ही निकला,
जिसका दूध पिया उसे ही डस लिया।

मंत्रीजी चीखे चिल्लाए नामी वैद हकीम बुलाये ,
मगर खेल में पासा तब पलट गया ,
जब ज़हर उल्टा असर कर गया ,
मंत्रीजी को कुछ ना हुआ, बेचारा सांप मर गया।

इस अबूझ पहेली का हल मैं बतलाता हूँ ,
आप गर समझे नहीं तो ठहरो, मैं समझाता हूँ ,
सांप से मंत्रीजी के घर एक माह तक दूध पिया था ,
पर मंत्रीजी ने जनता का पांच साल तक खून पिया था।
आखिर सांप ने काटा भी तो अपने बाप को था ,
कालसर्पदोष मंत्रीजी को नहीं सांप को था।

-शुभेंदु त्रिपाठी

शायरी

आखिर हो गई गलती,
अब सवाल क्या करे,
खुद मे बिखर गया मैं,
अब बवाल क्या करे

ना तू डर,
ना तू कर फिकर,
जा जी ले ज़िन्दगी,
हस खेल कर,
सपने देख कम से कम,
बस पूरे तो कर,
गिरते-गिरते सीख,
मगर कुछ तो कर,

पथिक तू बढ़ चल,बढ़ चल, चल बढ़ ,
परिणाम के सायों में न कभी उलझना तू,
उम्मीदों के दलदल मे न कभी धसना तू ,

सोच की घड़ी को तू निरंतर बढ़ाते चल,
किस्मत की झुठी बेड़ियो को तू ध्वस्त कर,
पथिक तू बढ़ चल,बढ़ चल, चल बढ़ ...

-आशीष उइके

आज दिल का हाल सुनाता हूँ
तुझे मैं तेरे लिए है जो जज्बात बताता हूँ
तू जान है मेरी खुशियों की पहचान है मेरी
बिना तेरे जिन्दगी विरान है मेरी

तू ना हो तो जैसे बिना इंटरनेट का प्लान हूँ मैं
तुझे तुझ से ज्यादा चाहने वाला इंसान हूँ मैं
और तेरा मेरी जिन्दगी में कुछ यूँ आना लिखा था
रुला के मुझे फिर तेरा जाना लिखा था

दुवाओं में मांगा था जिसे
हमने उसे ही खो दिया
आज फिर उसे देख
ये मासूम सा दिल रो दिया

कुछ अधूरी अनकही बातों से
कुछ बिखरे टूटे जज्बातों से
कुछ आधी-अधूरी मुलाकातों से
और मोहब्बत सीखीं है हमने
अंधेरी तन्हा रातों से

दिल उदास है तेरे रूठ जाने से
आंखों से नींदें खफा है तेरे चले जाने से
और अब रोके से नहीं रुकते ये आंसू
हो सके तो बात कर किसी बहाने से

-कुमार मोहित

वो इश्क बस एक रात का था

दिन ढला, फिर शाम आयी साथ में रजनी को लायी,
मदिरालय का मैं मुवक्किल मुझको घर की याद आयी।
हर गली हर रास्ता बस तिमिर के आगोश में था,
मय को पीकर मैं क्या जानूँ कि मैं कितने होश में था
उसी क्षण मेरी नज़र एक सुंदरी पर जा गिरी
जो खड़ी थी सामने नयनों से मुझको घूरती।
उसके नेत्रों से चला हर बाण खुद रतिनाथ का था,
वो इश्क बस एक रात का था।
वो इश्क बस एक रात का था।

उस अमावस रात में वो चांदनी सी चमचमाती,
उर्वशी जैसी वो मादक देख मुझको मुस्कुराती,
मैं अभागा फंस गया उस कामिनी के जाल में,
जैसे विश्वामित्र फंसा था मेनका की चाल में।
कुसूर मदिरा का नहीं उसकी कुटिल मुस्कान का था
वो इश्क बस एक रात का था।
वो इश्क बस एक रात का था।

धीरे से वह पास आयी, आके अभिनन्दन किया,
नयनों से वारुणी परोसी , कस के आलिंगन किया।
उसके अधरों की हाला के हर कण में भरा हलाहल था ,
फिर भी पीने को आतुर मैं , प्रेमी था या पागल था।
सही गलत का वक्त नहीं था , वक्त मेरे जज्बात का था,
वो इश्क बस एक रात का था।
वो इश्क बस एक रात का था।

उस मधुर विषैली मदिरा का ज्योंही मैंने रसपान किया,
मूर्छित होकर गिरा भूमि पर , मैंने देहावसान किया।
वह छलिया स्वयं मृत्यु थी, छलना उसका व्यापार था,
आज मैं था यार उसका, कल और कोई यार था।
प्यार पूरा हो न पाया अफ़सोस बस इस बात का था
वो इश्क बस एक रात का था।
वो इश्क बस एक रात का था।

-शुभेंदु त्रिपाठी

ग़ज़ल

कैसी है नाराज़गी जो कभी नही जाती
हर बात पर बेरुख़ी समझ नही आती

किस तरह से अब मैं समझाऊँ कैफियत
उसे मेरी कोई बात ही समझ नही आती

अब ख़ाने में कोई कमी नज़र नही आती
रिहाइश गाह में मेरी जगह नज़र नही आती

बेहतर हो के अब तू खुद ही मुझे बोल दे
गलती से भी तुझे मेरी याद नही आती

मिट जाएँगे ये फ़ासले एक उम्मीद थी, मगर
अब इंतज़ार की कोई वजह नज़र नही आती

-रवि यादव

रात- दिन खुद से मिल रहा हूं मैं।
घर से कम ही निकल रहा हूं मै।
राह तेरी तुझे मुबारक हों,

अपना रास्ता बदल रहा हूँ मैं।
चाहता था कि फूंक दू सब कुछ,
खुद की आतिश में जल रहा हूँ मै।
मोम को तू ही संग कहता था,
देख अब तक पिघल रहा हूँ मैं।
उसकी मंशा थी मैं बहल जाऊ,

-पवन गुप्ता

नज़्म

वो हवा सी बहती थी, मेरे इर्दगिर्द
और ख़ुशनुमा सी हो जाती थी
बस मेरे छूने भर से ही
वो जवाँ सी हो जाती थी
भिगो कर मुझे इश्क़ में
फिर धुआँ सी हो जाती थी

मुस्कुरा कर मिलती थी
चूमती थी मेरे माथे को
ना जाने क्या सोचती थी
और रुआंसी हो जाती थी
मेरी शरारतों को देख कर
मेरी माँ सी हो जाती थी

वो मेरी ज़िंदगी, मेरी जान थी
ये जानती थी बेशक
फिर भी मेरे पूछने पर
अनजान सी हो जाती थी

-रवि यादव

मेरे पापा

जब माँ मुझे डाँटती ,
तो दूर से हँसा रहे थे ,
वो थे मेरे पापा,

जब मैं सो जाता,
तो कोई चुपके से,
सिर पर हाथ फेर जाता,
वो थे मेरे पापा,

यूं तो कभी- कभी परेशान होते थे,
पर फिर भी मुस्कान बाँटते थे,
वो थे मेरे पापा,

खुद के लिए तो कभी न सोचते,
पर घर के बारे मे बार-बार सोचते,
वो थे मेरे पापा,

मैं तो सिर्फ अपनी खुशी में हँसता हूँ,
पर जो मेरी छोटी-सी जीत मे भी हँसे,
वो थे मेरे पापा,

जीवन मे जिसने मुझे पहला कदम रखना सिखाया
वो थे मेरे पापा,
जो प्यार न जताकर प्यार करे,
वो थे मेरे पापा

-आशीष उइके

मेरी माँ

याद है मुझे वो एक दिन हाथ टूट गया था मेरा
दर्द से चिल्लाया था मैं

पहली आवाज में माँ को बुलाया था
सब छोड़ वो दौड़े चलीं आई थी

क्या हो गया मेरे लाल को इसी बात ने उनके दिल
की धड़कने बढ़ाई थी

मुझे जमीन पर पड़ा रोता देख वो बहुत घबराई थी
फिर झट से पास आ कर मुझे गले से लगाई थी

हाँ फिर डांट भी बहुत सुनाई थी
और देखा था मैंने आंखें उनकी भी भर आई थी

दर्द से पूरी रात चिल्लाया था मैं
और सो वो भी नहीं पाई थी

-कुमार मोहित

भारतीय प्रोधौगिकी संस्थान
इंदौर

रचना (डिज़ाइन): अरविंद सिंह
संपादिका: शिल्पा चौहान
सह-संपादक: शिवम सरले, अरविंद सिंह